MANAVA DHARMASAR

OR

THE ORDINANCES

OF

MANU

Comprising the Indian System of Duties

ABRIDGED & TRANSLATED FROM THE ORIGINAL SANSKRIT

BY

RAJA SIVA PRASAD, C.S.I.

FOURTH EDITION.

LUCKNOW:

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press.

1926.

भूमिका

मनुस्मृति हिन्दुओं का मुख्य धर्मशास्त्र है। उसको कोई भी हिन्दू अप्रामाणिक नहीं कहसकता है॥ वेद में लिखा है कि मनुजी ने जो कुछ कहा उसे जीव के लिये औषध समझना। (यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्) और बृहस्पति लिखते हैं कि धर्मशास्त्ररचयिताओं में मनुजी सबसे प्रधान और अतिमान्य हैं क्योंकि उन्होंने अपने धर्मशास्त्र में सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्य लिया है जो उनके धर्मशास्त्र से विरुद्ध हो उसे कदापि नहीं मानना॥

श्लोक

वेदार्थोपनिबन्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्॥
मन्वर्थविपरीतायाः सा स्मृतिर्न प्रशस्यते॥ १॥

यवन म्लेच्छ और इंगलेण्डीय सुविचक्षण पंडित भी मानवधर्मशास्त्र को वेद छोड़कर संसार के सारे ग्रंथों से प्राचीन मानते हैं। और सर विलियम् जोन्स साहिब जो सुप्रिम् कोर्ट के प्रख्यात जज्ज थे इसे किसी समय में यूनान और मिसर देश तक प्रचलित मानते हैं॥ खेद की बात है कि हमारे देशवासी हिन्दू कहलाके अपने मानवधर्मशास्त्र को न जानें। और सारे काम उसके विरुद्ध करें॥

जो वचन ब्राह्मणों ने दान दक्षिणा लेने में अपने उपयोगी समझे उन्हें तो सर्वदा पढ़ाते सुनाते रहे । और जो वचन हमको हमारे धर्म की जड़ जान पड़ते हैं उन्हें मानो मन ही से भुलाय दिये ॥ जिन वचनों को अपने प्रतिकूल पाया उन्हें कह दिया कि केवल सत्ययुग के लिये थे कलिकालवालों को इनसे काम ही नहीं । अथवा टीका करके अर्थ पलट दिया कहीं का कहीं ॥ और जो वचन अपने प्रयोजनीय और इष्टसाधक देखे उन्हें बतलाया । कि न माने सो हिन्दू की जाति से बाहर निकाला गया ॥ हमारा बहुत दिनों से विचार था कि मानव धर्मशास्त्र का संक्षेप करके भाषा में छपवावें । जिसमें हमारे देशवासी जो संस्कृत नहीं जानते सहज में उसका अभिप्राय जान सकें ॥ पर अब सर्कारी पाठशाला के धर्मशास्त्री प्रख्यात पंडित गुलजारजी ने जो संपूर्ण ग्रंथ को बाबू देवीदयालसिंह भरथरा के ताल्लुक़ेदार के लिये भाषा कर डाला । तो हम को अपना काम सिद्ध करना और भी सुगम होगया ॥ सर विलियम जोन्स साहिब के अंग्रेज़ी भाषान्तर ग्रंथ से भी सहायता ली । और यह मानवधर्मसार छोटी सी पुस्तक अपने देशवासियों के निमित्त ऐसी रची ॥ जिससे उन्हें प्रकट होजावे कि कौनसा हिन्दुओं का आदि धर्म है । और जो अब हिन्दू कहलाते हैं उनका कैसा कर्म है ॥ धर्म हिन्दुओं का यह उनके आगे है । अब इस पर चलना न चलना उनके हाथ में है ॥ और यदि कोई कहे कि

भाषान्तर शुद्ध नहीं बनाया अथवा इन श्लोकों को मनुजी ने नहीं बनाया ॥ तो साक्षी के लिये विद्यालय वाराणसी पुरी के अति प्रसिद्ध अद्वितीय महान् पंडित ईश्वरीदत्तजी पांड़े और सखारामजी भट्ट भट्ट और हीरानंदजी चतुर्वेदी और रामचन्द्रजी शास्त्री और दुर्गादत्तजी वैयाकरण की चिट्ठी नीचे छाप दी है । पहली हमारी है दूसरी उसके उत्तर में उन महात्माओं की है ॥

स्वस्ति श्रीमत्परमदयाकर कृपासागर सर्वशास्त्रधुरंधर श्री ६ पंडितवर ईश्वरीदत्तजी पांड़े सखारामजी भट्ट भट्ट हीरानन्दजी चतुर्वेदी रामचन्द्रजी शास्त्री दुर्गादत्तजी वैयाकरण योग्य शिवप्रसाद का साष्टाङ्ग प्रणाम पहुँचे अपरंच मनुस्मृति का संक्षेप करके भाषा सहित आपके पास भेजा है सो उसे देख के उसके शुद्धाशुद्ध की व्यवस्था लिख भेजिये किमधिकम् ॥

लि० शिवप्रसाद ॥

मनुस्मृति का संक्षेप भाषा सहित आपने भेजा सो देखा बहुत शुद्ध है अशुद्ध कहीं कुछ नहीं ॥

लि० श्रीरामः श्रीईश्वरीदत्तशर्म्मपण्डितानाम् ।

लि० सखाराम भट्ट भट्ट ।

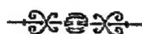
लि० हीरानन्द पं० ।

लि० रामचन्द्र शास्त्री ।

लि० दुर्गादत्त शर्म्मा ॥

मानवधर्मसार।

प्रथम अध्याय ॥



(१) मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् १

(१) मनुजी एकाग्रचित्त बैठे हुये थे महर्षियों ने उनके पास जाके और यथान्याय प्रति पूजा करके कहा ॥ १ ॥

(२) भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥
अन्तरप्रभवानाञ्च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि २

(२) हे भगवन्! सब वर्णों का और अन्तर प्रभवों का धर्म क्रम से ठीक ठीक हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥

---

(२) जो ऊंचे वर्ण के पुरुष और नीचे वर्ण की विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हो, उसे अन्तरप्रभव कहते हैं ॥

(३) सतैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ॥
प्रत्युवाचार्च्येतान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ४

(३) जब उन महात्माओं ने महातेजस्वी मनुजी से यह पूछा तब मनुजी ने उन सब महर्षियों की पूजा करके कहा कि सुनिये॥४॥

(४) आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ५

(४) यह सब जगत् पहले तम अर्थात् अँधेरा था न वह जाना गया था न उसका कुछ लक्षण था न वह लक्षण करने के योग्य था न जानने के योग्य था मानों नींद में सोया हुआ था ॥ ५ ॥

(५) ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ६

(५) फिर तब महाभूतादि अर्थात् पृथ्वी अप तेज वायु आकाशादि से प्रकट है प्रभाव जिसका तम का दूरकरनेवाला अव्यक्त स्वयम्भू भगवान् इस जगत् को व्यक्त अर्थात् प्रकट करता हुआ॥६॥

(६) योसावतीन्द्रियग्राह्यस्सूक्ष्मोऽव्यक्तस्सनातनः ॥
सर्वभूतमयोचिन्त्यस्स एव स्वयमुद्बभौ ७

(६) जो भगवान् जितेन्द्रियों का ग्राह्य सूक्ष्म अव्यक्त सनातन अचिन्त्य सर्वभूतमय है सोई आप से आप प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

द्वितीय अध्याय ।

(७) वेदाः स्मृतिस्सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥
एतच्चतुर्विधं प्राहुस्साक्षाद्धर्म्मस्य लक्षणम् । १२

(७) वेद और स्मृति और भले लोगों का आचार और अपने आत्मा का प्रिय ये चारों साक्षात् धर्म के लक्षण कहे हैं ॥ १२ ॥

(८) पूजयेदशनन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ॥
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ५४

(८) प्रतिदिन भोजन का आदर करे और उसकी निन्दा कभी न करे भोजन को देखकर प्रसन्न होवे और हर्ष करे और ऐसा कहे कि हम को यह भोजन नित्य मिला करे ॥ ५४ ॥

---

(७) अपने आत्मा का प्रिय अर्थात् जिस बात में अपना अन्तःकरण कोई बुराई न देखे और भला समझे वह साक्षात् धर्म है वेद और विद्याका एकही अर्थ है जिसे अंग्रेज़ीमें KNOWLEDGE नालेज कहते हैं, और स्मृति स्मरण को कहते हैं श्रुति और स्मृति अर्थात् सुना हुआ और स्मरण किया हुआ ॥

(८) अर्थात् जैसा भोजन मिले वैसा ही प्रसन्न होके सन्तोष के साथ खा लेवे यह न कहे और न मन में लावे कि खाने को अच्छा नहीं मिला अथवा रूखा फ़ीका है ॥

(९) नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥
न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ५६

(९) जूठ किसी को न देना सायंकाल और प्रातःकाल के मध्य में भोजन न करना (अर्थात् तीन वेर भोजन न करना) अतिभोजन (अर्थात् बहुत भोजन) न करना जूठे मुँह कहीं न जाना ॥ ५६ ॥

(१०) अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ५७

(१०) अति भोजन आयुष आरोग्य स्वर्ग पुण्य इन सबोंके हित नहीं है और लोक में निंदित है इसलिये अति भोजन नहीं करना ॥ ५७ ॥

(११) वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः॥
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ६७

---

(९) अर्थात् जो मनुष्य जूठा खाने योग्य नहीं है उसे जूठा न देना अथवा अच्छा कहके जूठा न देना अथवा अच्छा दिया जा सके तो जूठा न देना परन्तु डोम चमार इत्यादि जो सदाही जूठा खाया करते हैं उनको उच्छिष्ट देने में तो कुछ अधर्म नहीं जान पड़ता क्योंकि अन्न नष्ट करने से तो उसको किसी भूखे के मुँह में पड़जाना ही भला है ॥

(११) स्त्रियों का विवाह यही वैदिक संस्कार है पति की सेवा यही गुरुकुल में वास है गृह का काम काज यही अग्नि की सेवा है ॥ ६७ ॥

(१२) ब्रह्मारम्भेवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोस्सदा ॥
संहत्य हस्तावध्येयं सहि ब्रह्माञ्जलिःस्मृतः ७१

(१२) प्रतिदिन पाठ के आरम्भ में और समाप्ति में अपने दोनों हाथ से गुरु के दोनों पैर को ग्रहण करे और दोनों हाथ जोड़के पाठ पढ़े हाथ का जोड़ना ब्रह्माञ्जली कहाती है ॥७१॥

(१३) अध्येष्यमाणन्तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ॥
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोस्त्विति चारमेत् ७२

(१३) शिष्यों के पढ़ाने के समय में गुरु ऐसा बोले कि अधीष्व भोः (अर्थात् पढ़ो) तब शिष्य पढ़े और जब कहे कि विरामोस्तु अर्थात् बस करो तब शिष्य चुप रहे इसका तात्पर्य यह है कि गुरु की आज्ञा से पढ़े और चुप रहे ॥ ७२ ॥

---

(११) अर्थात् ब्याही हुई स्त्रियों का यही धर्म है कि पति की सेवा करें और घरका कामकाज ॥

(१२) अर्थात् जिससे पाठ पढ़े उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करे और उसे पूज्य समझे ॥

(१३) अर्थात् जो काम करे सो गुरु की आज्ञानुसार करे ॥

(१४) इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ॥
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ८८

(१४) विषयों से इन्द्रियों को रोके जैसे सारथी कुचाल से घोड़ों को रोकता है ॥ ८८ ॥

(१५) श्रोत्रत्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी ॥
पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ९०

(१५) श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका पायु उपस्थ हस्त पाद वाणी ॥ ९० ॥

(१६) बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ९१

(१६) इन सर्वोमें पहिली पांच ज्ञान इन्द्रिय कहाती हैं दूसरी पांच कर्म इन्द्रिय कहाती हैं ॥ ९१ ॥

(१७) एकादशं मनोज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ॥
यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ९२

(१७) ग्यारहवां मन है अपने गुण करके दोनों (अर्थात् पांच

---

(१४) हम नहीं जानते कि जो लोग हिन्दू कहलाते हैं वे मनुजी के इस वचन पर क्यों नहीं ध्यान देते ॥

ज्ञान इन्द्रिय और पांच कर्म इन्द्रिय) कहाती हैं मन के जीतने से ये सब दशों जीती जाती हैं ॥ ९२ ॥

(१८) इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ॥
सन्नियम्य तु तान्येव ततःसिद्धिन्नियच्छति ९३

(१८) इन्द्रियों के प्रसंग से जीव दोषी होता है और इन्द्रियों का निग्रह करे (अर्थात् विषयों में न लगावे) तो जीव सिद्धि को पाता है ॥ ९३ ॥

(१९) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ९४

(१९) जिस वस्तु में मन की इच्छा है उस वस्तु के मिलने से मन को तृप्ति हो सो कभी नहीं होती जैसे घी को पाके अग्नि बढ़ती ही है ॥ ९४ ॥

(२०) यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान् यश्चैमान्केवलांस्त्यजेत् ॥
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ९५

---

(१८) धन्य हैं वे महात्मा पुरुष जो इन्द्रियों का निग्रह करते हैं जो लोग केवल नाम के ब्राह्मणों को दही पेड़ा खिला के सिद्धि को ढूंढ़ते हैं उन्हें मनुजी के इस वचन को अच्छी तरह पढ़ना चाहिये ॥

(१९) अर्थात् सांसारिक वस्तु की इच्छा करना वृथा है ॥

(२०) जिस मनुष्य को मन का इच्छित पदार्थ सब मिलता है और जो मिले हुये पदार्थों का त्याग करता है इन दोनों में त्याग करनेवाला बड़ा है ॥ ९५ ॥

(२१) न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया ॥
विषयेषु प्रजुष्टानि यथाज्ञानेन नित्यशः ९६

(२१) विषयों की सेवा न करने से उनका ऐसा त्याग नहीं होता जैसा ज्ञान से होता है ॥ ९६ ॥

(२२) वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमांश्च तपांसि च॥
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिङ्गच्छन्तिकर्हि चित् ९७

(२२) जिसका स्वभाव दुष्ट है उसको वेद दान यज्ञ नियम तप ये सब भी सिद्धि को नहीं दे सक्के ॥ ९७ ॥

(२३) श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः॥
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ९८

(२३) जो मनुष्य सुन के छू के देख के भोग करके सूंघ के न हर्ष को पाता है और न इसके विना शोक को पाता सो जितेन्द्रिय कहाता है ॥ ९८ ॥

---

(२२) अर्थात् स्वभाव का दुष्ट होना बहुत ही बुरा है इसलिये मनुष्य अपना स्वभाव अच्छा रखने का बड़ा यत्न करे ॥

(२४) इन्द्रियाणान्तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ९९

(२४) सब इन्द्रियों मेंसे एक भी इन्द्रिय अपने विषय में लगी तो जीवकी बुद्धि जाती रहती है जैसे मशक में एक छेद होने से भी पानी निकल जाता है ॥ ९९ ॥

(२५) वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ॥
सर्वान्संसाधयेदर्थानाक्षिएवन् योगतस्तनुम् १००

(२५) उपाय से सब इन्द्रियों को और मनको वश करके जिसमें शरीर को दुःख न होने पावे ऐसी रीति से सब अर्थों को सिद्ध करे ॥ १०० ॥

(२६) नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः ॥
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ११०

(२६) विना पूछे कोई बात किसी को न कहना अन्याय से पूछे तो भी न कहना जानता हुआ भी बुद्धिमान् लोक में जड़ की नाईं रहे ॥ ११० ॥

(२७) शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ॥
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ११९

(२७) बड़े लोग जिस आसन पर वा जिस शय्या पर बैठे हों उसपर न बैठे और आप शय्या अथवा आसन पर बैठा हो तो उठ के बड़े लोगों को प्रणाम करे ॥ ११९ ॥

(२८) अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् १२१

(२८) जो मनुष्य बड़े (अर्थात् बूढ़े) लोगों को नित्य प्रणाम करता है और सेवा करता है उसके विद्या आयुष् यश बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥

(२९) ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ॥
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च १२७

(२९) ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय वैश्य से क्षेम शूद्र से आरोग्य पूछना चाहिये ॥ १२७ ॥

(३०) मातुलांश्चपितृव्यांश्चश्वशुरानृत्विजोगुरून् ॥
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः १३०

(३०) मामा चाचा श्वशुर ऋत्विज् (अर्थात् यज्ञकरानेवाला) गुरु ये सब अपने वय से छोटे भी हों तो उनको मैं अमुक हूं ऐसा कहकर उठके प्रणाम करे ॥ १३० ॥

(३१) मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ॥
सम्पूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्य्यया १३१

(३१) मौसी मामी सासु फूफी ये सब गुरु की स्त्री के सम हैं इस लिये गुरुकी स्त्रीकी नाईं इन सबकी पूजा करना उचितहै १३१॥

(३२) भ्रातुर्भार्य्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ॥
विप्रोष्यतूपसंग्राह्याज्ञातिसम्बन्धियोषितः १३२

(३२) बड़े भाई की जो सवर्णा स्त्री है (अर्थात् दूसरे वर्ण की नहीं है) उसका पैर छूके नित्य प्रणाम करना और जाति सम्बन्ध की जो स्त्री हैं उसका विदेश से आके पैर छूके प्रणाम करना अपने देश में रहे तब पैर को न छूवे प्रणाममात्र करे ॥ १३२ ॥

(३३) पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ॥
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माताताभ्यो गरीयसी १३३

(३३) फूफी मौसी बड़ी बहिन इन सबको माताके समान जानना यद्यपि माता इन सबोंसे बड़ी है ॥ १३३ ॥

(३४) दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम्॥
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु १३४

(३४) एक ग्राम वा एक पुर का रहनेवाला गुण से रहित हो और

दशवर्ष जेठा हो तो उसके साथ मित्रता का व्यवहार होता है और गुणी हो पांच वर्ष जेठा हो तो भी मित्रता ही का व्यवहार होता है और वेद पढ़ा हो तो तीन वर्ष जेठा हो तो मित्रता ही होती है और सम्बन्ध में हो तो थोड़े ही काल में मित्रता होती है सर्वत्र जो काल कह आये हैं उसके ऊपर ज्येष्ठता का व्यवहार होता है ॥ १३४ ॥

(३५) वित्तम्बन्धुवयःकर्म्म विद्या भवति पञ्चमी ॥
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् १३६

(३५) द्रव्य बन्धु वय कर्म विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं इनमें पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर बड़ा है ॥ १३६ ॥

(३६) पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ॥
यत्र स्युः सोऽत्रमानार्हः शूद्रोऽपि दशमीङ्गतः १३७

(३६) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जिसमें इन पांचों से जितनी अधिक वस्तु रहे वही उतना मानके योग्य है नब्बे ९० वर्ष के ऊपर वय हो तो शूद्र भी मान के योग्य है ॥ १३७ ॥

---

(३५) अर्थात् विद्या सबसे बड़ी है और विद्वान् पुरुष सबसे अधिक मान्य है ॥

(३६) यदि वैश्य विद्वान् हो तो वह मूर्ख ब्राह्मण से अधिक मान्य होगा ॥

(३७) चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियः॥
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च १३८

(३७) जो रथपर चढ़ा है और जो नव्वे ९० वर्ष के ऊपर का वयवाला है जो रोगी है जो बोझ लिये है जो स्त्री है जो ब्रह्मचारी है जो राजा है जो विवाह करने के लिये जाता है इन सबके लिये राह छोड़ देनी (अर्थात् इन सबोंमें से कोई एक ओर से आता हो और उसके समीप दूसरी ओर से कोई आताहो तो वह राह छोड़देवे इन सबोंके जानेके लिये॥ १३८॥

(३८) उपाध्यायान्दशाचार्य्यआचार्य्याणांशतम्पिता॥
सहस्रन्तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते १४५

(३८) उपाध्याय से दश गुण आचार्य्य बड़ा है आचार्य्य से सौ गुण पिता बड़ा है पितासे हजारगुण माता बड़ी है॥ १४५॥

(३९) ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता॥
बालोपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्म्मतः १५०

(३९) अपने वय से छोटा है और पढ़ाता है और धर्म्म को सिखलाता है तो वह भी गुरु कहाता है॥ १५०॥

---

(३८) धन्य हैं वे जो इस वचन को मानते हैं और पिता माता की सेवा करते हैं॥

(४०) अध्यापयामास पितॄञ्शिशुराङ्गिरसः कविः ॥
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्यतान् १५१

(४०) अंगिरा के लड़के ने अपने चचाओं को पढ़ाया और बेटा ऐसा कहा क्योंकि ज्ञान में वह बड़ा था इसलिये ॥ १५१ ॥

(४१) अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ॥
अज्ञं हि बालमित्याहुःपितेत्येवतुमन्त्रदम् १५३

(४१) क्योंकि जो कुछ नहीं जानता वही बालक है और जो मंत्र देता है वही पिता है ॥ १५३ ॥

(४२) न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः स नो महान् १५४

(४२) वर्ष और केशका पकना द्रव्य और बन्धु इन सबोंसे मनुष्य बड़ा नहीं होता ऋषिलोगों ने यही धर्म कहा है कि हम सबमें पढ़नेवाला जो है सोई बड़ा है ॥ १५४ ॥

(४३) न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ॥
यो वै युवाप्यधीयानस्तन्देवाःस्थविरं विदुः १५६

(४३) केशके पकने से वृद्ध नहीं कहलाता है युवा है और पढ़ा है तो उसको देवताओं ने वृद्ध कहा है ॥ १५६ ॥

(४४) अहिंसयैव भूतानां कार्य्यं श्रेयोनुशासनम् ॥
वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णाप्रयोज्या धर्ममिच्छता १५९

(४४) जिसमें किसी जीवको पीड़ा न हो ऐसा कल्याण करनेवाला जो कर्म उस कर्म की आज्ञा देनी चाहिये और मधुर चिक्कण वाणी बोलनी चाहिये धर्म की इच्छा करनेवाले को ॥१५९॥

(४५) यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ॥
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् १६०

(४५) जिसकी वाणी और मन शुद्ध है और सर्वकाल में रक्षित है सो वेदान्त के फल को पाता है ॥ १६० ॥

(४६) नारुन्तुदः स्यादार्तोपि न परद्रोहकर्म्मधीः ॥
यस्यास्योद्विजते वाचा नालोक्यान्तामुदीरयेत् १६१

(४६) दुःखित हो तो भी ऐसी वात न बोले कि जिससे किसीको मर्म्मघात हो दूसरे के द्रोहकर्म में वुद्धि को न रक्खे जिस वात से किसीके जीव को उद्वेग हो ऐसी वात न वोले ॥ १६१ ॥

(४७) सन्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ॥
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा १६२

(४७) सन्मान से ब्राह्मण डरता रहे विष की नाईं और अपमान की इच्छा करे अमृत की नाईं ॥ १६२ ॥

(४८) वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः ॥
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनाञ्चैव हिंसनम् १७७

(४८) मधु मांस गंध माला रस स्त्री और शुक्त (अर्थात् जो स्वभाव से मधुर है काल पाके खट्टा होजावे) प्राणियों का मारना ॥ १७७ ॥

(४९) अभ्यङ्गमञ्जनञ्चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥
कामं क्रोधञ्च लोभञ्च नर्त्तनङ्गीतवादनम् १७८

(४९) उबटन काजल जूता छाता काम क्रोध लोभ नाच गीत बाजा ॥ १७८ ॥

---

(४७) खेद की बात है कि अब के ब्राह्मण इस वचन पर कुछ भी ध्यान नहीं करते ॥

(४८) यह वचन और जो आगे लिखे जाते हैं ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी के लिये हैं जब कि वह गुरु के यहां पढ़ता हो ॥ मधु मांस इत्यादि का त्याग इस कारण कहा कि जिसमें इन्द्रियां प्रबल न हों नहीं तो फिर पढ़ने में काहे को जी लगेगा और जूते छाते इत्यादि का त्याग इस कारण कहा कि जिसमें उसे धूप में चलने का अभ्यास हो और निरा सुकुमार न बनजावे नहीं तो फिर उससे कुछ काम काहे को होसकेगा ॥

(५०) द्यूतञ्च जनवादञ्च परिवादंतथानृतम् ॥
स्त्रीणाञ्च प्रेक्षणालम्भमुपघातम्परस्य च १७९

(५०) जूआ झगड़ा पराये का झूठा दोष कहना स्त्रियों को देखना उनसे मिलना पराये का नाश इन सब बातों से बचा रहे ॥ १७९ ॥

(५१) नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ॥
आस्यतामिति चोक्तस्सन्नासीताभिमुखंगुरोः १९३

(५१) ओढ़ने का जो कपड़ा है उसके बाहर दहिने हाथ को सदा निकाले रहे साधु की नाईं आचार सहित रहे चंचलता को छोड़ दे बैठो ऐसी आज्ञा गुरु की हो तब उनके सम्मुख बैठे ॥ १९३ ॥

(५२) हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥
उत्तिष्ठेत्प्रथमञ्चास्य चरमञ्चैव संविशेत् १९४

(५२) गुरके समीप सर्वकाल में हीन अन्न और हीन वस्त्र से और हीन स्वरूप से रहे (अर्थात् जैसा अन्न गुरु भोजन करे

---

(५२) बड़े खेद की बात है कि अब लोग इसप्रकार गुरु के घर रखके अपने लड़कों को नहीं पढ़ाते आगे कृष्णचन्द्र इत्यादि ने भी इसी ढबसे विद्या उपार्जन की थी ॥

उससे निकृष्ट अन्न भोजन करे और जैसा वस्त्र गुरु पहिने उससे निकृष्ट वस्त्र पहिने और जैसा स्वरूप गुरु बनाये रहैं उससे निकृष्ट स्वरूप अपना बनाये रहै) गुरु के जागने के पहिले जागे और गुरु के सोने के पीछे सोवे ॥ १९४ ॥

(५३) प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् ॥
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः १९५

(५३) सोता आसन पर बैठा भोजन करता और विमुख (अर्थात् मुख फेरे) गुरुसे न बोले और गुरु की बात न सुने किंतु॥ १९५॥

(५४) आसीने स्वस्थितः कुर्य्यादभिगच्छन्तु तिष्ठतः ॥
प्रत्युद्गम्यतो व्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः १९६

(५४) गुरु बैठे हों तो आप खड़ा होकर गुरु खड़े हों तो आप उनके सामने आनकर गुरु आते हों तो सम्मुख जाकर और गुरु दौड़ते हों तो आप भी पीछे दौड़कर बोले और बात को सुने ॥१९६ ॥

(५५) पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः १९७

(५५) गुरु विमुख हों तो उनके सम्मुख जाके और दूर हों तो समीप जाके और सोये हों तो प्रणाम करके आज्ञाको सुने।। १९७॥

(५६) नीचं शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् १९८

(५६) गुरु के समीप अपनी शय्या और आसन नीचे रक्खे गुरु के देखते हुये जैसा चाहे तैसा आसन करके न रहे (अर्थात् गुरु के सामने पांव फैलाके अथवा सहारालगाके न बैठे) ॥१९८॥

(५७) नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् १९९

(५७) गुरु के पीछे भी केवल उनके नाम को न लेवे और गुरु के गमन भाषण चेष्टा की नाईं आप यह तीनों कर्म न करे॥१९९॥

(५८) गुरोर्यत्रपरीवादो निन्दावापि प्रवर्त्तते ॥
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यं वा ततोऽन्यतः २००

(५८) जहां गुरु का सच्चा वा झूठा दोष कहा जाता हो वा निंदा होती हो तहां कान मूँदना अथवा वहां से उठ जाना॥२००॥

(५९) दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ॥
यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् २०२

(५९) गुरु की पूजा दूर से (अर्थात् किसी से पूजा की सामग्री भेज के) न करनी और क्रुद्ध होके न करनी अपनी स्त्री के समीप हों तो भी न करनी आप सवारी पर हो वा

आसन पर बैठा हो तो सवारी से उतरके और आसन को छोड़के प्रणाम करे ॥ २०२ ॥

(६०) विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृत्तिः स्वयोनिषु ॥
प्रतिषेधत्सु चाधर्म्मान्हितं चोपदिशत्स्वपि २०६

(६०) इसी प्रकार से आचार्य्य को छोड़कर उपाध्याय आदि जो दश गुरु हैं और सम्बंधी जो चचा आदि हैं और जो अधर्म्म से बचाते हैं और जो हित बात का उपदेश करते हैं उन सबसे सदा गुरु की नाईं सारा व्यवहार रक्खे ॥ २०६ ॥

(६१) श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ॥
गुरुपुत्रेषु चार्य्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु २०७

(६१) जो बड़े लोग हैं और श्रेष्ठ जो गुरुपुत्र हैं और जो गुरु के बंधुजन हैं इन सबसे गुरु की नाईं आचरण करे ॥ २०७ ॥

(६२) बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्म्मणि ॥
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति २०८

(६२) गुरु का पुत्र अपने से वय में छोटा हो अथवा समान हो अथवा

---

(६०) हे परमेश्वर ! फिर भी कभी ऐसा दिन आवेगा कि हमारे स्वदेशी इस प्रकार अपने गुरु को मानेंगे और उनकी सेवा करेंगे ॥

शिष्य हो और पढ़ाने में समर्थ हो तो यज्ञकर्म में उसका मान गुरु की नाईं करना चाहिये ॥ २०८ ॥

(६३) स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ॥
अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः २१३

(६३) मनुष्यों को दूषित करना यह नारियों का स्वभाव ही है इसलिये पंडित लोग नारी के विषय में सावधानता से रहते हैं ॥ २१३ ॥

(६४) अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ॥
प्रमदा ह्युत्पथन्नेतुं कामक्रोधवशानुगम् २१४

(६४) काम क्रोध सहित हो पंडित हो चाहे मूर्ख हो उसे निषिद्ध राह पर लेजाने को स्त्री समर्थ हैं ॥ २१४ ॥

(६५) मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति २१५

(६५) माता भगिनी लड़की इन सबोंके साथ भी एकांत में न रहना इन्द्रिय सब बलवान् हैं पंडितों को भी खींचती हैं ॥ २१५ ॥

(६६) यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ॥
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति २१८

(६६) जिस प्रकार कुदारी से खोदते खोदते जल को मनुष्य पाता

है तिसीप्रकार सेवा करते करते गुरु की सम्पूर्ण विद्या को शिष्य पाता है ॥ २१८ ॥

(६७) यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत् ॥
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः २२३

(६७) स्त्री अथवा छोटा मनुष्य कोई अच्छी बात करता हो तो उस बात को ग्रहण करे जो कर्म्मशास्त्र से अविरुद्ध है उसमें पुरुष का मन सन्तुष्ट हो सो करे ॥ २२३ ॥

(६८) धर्म्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म्म एव च ॥
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः २२४

(६८) किसी के मत में धर्म्म और अर्थ यह दोनों कल्याणकरनहार हैं किसी के मत में अर्थ और काम कल्याण करनहार हैं किसी के मत में धर्म्म कल्याण करनहार है अब अपना मत कहते हैं कि धर्म्म अर्थ काम यह तीनों परस्पर अविरुद्ध हैं ॥ २२४ ॥

(६९) आचार्य्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः २२६

---

(६८) अर्थात् धर्म्म के साथ अर्थ काम यह दोनों भी प्राप्त हो सक्ते हैं इनका परस्पर विरोध नहीं है ॥

(६९) आचार्य्य पिता जेठा सहोदर भाई इन तीनों का अपमान आप दुःखित हो तौ भी न करे ब्राह्मण को तो अवश्य यह बात चाहिये ॥ २२६ ॥

(७०) यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ॥
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि २२७

(७०) मनुष्य के उत्पत्ति समय में जो क्लेश माता पिता सहते हैं उससे मनुष्य सौ वर्ष में भी उऋण नहीं हो सक्ता (इसलिये ये देवता रूप हैं) इनका अपमान कदापि न करना चाहिये ॥ २२७ ॥

(७१) तयोर्नित्यं प्रियं कुर्य्यादाचार्यस्य च सर्वदा ॥
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपःसर्व्वं समाप्यते २२८

(७१) माता पिता आचार्य्य इन तीनों का प्रिय नित्य ही करना इन तीनों के सन्तुष्ट होने से सब तपस्या समाप्त होती है ॥ २२८ ॥

(७२) तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ॥
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्म्ममन्यं समाचरेत् २२९

---

(७०) धन्य हैं वे जो इन वचनों को याद रखके माता पिता की सेवा करते हैं ॥

(७२) इन्हीं तीनों की सेवा परम तप है इन्हीं की आज्ञा विना कोई दूसरा धर्म्म नहीं करना॥ २२९॥

(७३) त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः॥
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोग्नयः २३०

(७३) तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि यही तीनों हैं॥ २३०॥

(७४) सर्व्वे तस्यादृता धर्म्मा यस्यैते त्रय आदृताः॥
अनादृतास्तुयस्यैतेसर्वास्तस्याऽफलाःक्रियाः २३४

(७४) जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर किया उसके सब धर्म आदर को पा चुके और जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उसकी सब क्रिया निष्फल हुई॥ २३४॥

(७५) यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्॥
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्य्यात्प्रियहिते रतः २३५

(७५) जब तक ये तीनों जीते रहें तब तक स्वतन्त्र होकर दूसरा धर्म्म न करें इन्हीं की सेवा और इन्हीं के हित और प्रिय को करता रहे॥ २३५॥

(७६) श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि॥
अन्त्यादपि परं धर्म्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि २३८

(७६) श्रद्धा करके विद्या नीच से भी लेनी और परम धर्म्म चाण्डालसे भी लेना औरस्त्रीरत्न दुष्टकुलसे भी लेना ॥२३८॥

(७७) विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ॥
विविधानिच शिल्पानिसमादेयानि सर्वतः २३९

(७७) विष बालक शत्रु अपवित्र इन सबों से क्रम करके अमृत सुन्दर वचन सुन्दर आचरण सुवर्ण इन सबको ग्रहण करना ॥ २३९ ॥

(७८) स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्म्मः शौचं सुभाषितम् ॥
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः २४०

(७८) स्त्री रत्न विद्या धर्म्म पवित्रता सुन्दर वचन नाना प्रकार की कारीगरी इन सबकों जहां से मिलें वहां से लेना ॥ २४० ॥

(७९) अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ॥
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः २४१

(७९) आपत्काल आके पड़े तो क्षत्रिय आदि से ब्राह्मण पढ़े जबतक पढ़े तबतक उस गुरुके पीछे चले और सेवाकरे॥२४१॥

---

(७७) अर्थात् बालक और शत्रु भी अच्छी बात कहें अथवा अच्छा काम करें तो उसे ग्रहण करना अनादर कदापि न करना ॥

तृतीय अध्याय ॥

(८०) पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ॥
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ५५

(८०) बहुत कल्याण की इच्छा करनेवाले जो पिता भाई पति देवर हैं ये सब वस्त्र और आभूषण से स्त्रियों की पूजा करें ॥ ५५॥

(८१) यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ॥
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्व्वास्तत्राफलाःक्रियाः ५६

(८१) जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है उस कुल में देवता रमण करते हैं और जहां स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहां सब क्रियाएँ निष्फल होती हैं ॥ ५६ ॥

(८२) शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्॥
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्व्वदा ५७

(८२) जिस कुल में स्त्री शोक करती हैं वह कुल झटपट नष्ट हो

---

(८०) अर्थात् स्त्रियों को प्रसन्न रक्खें ॥

(८१) अर्थात् स्त्रियों का अपमान कदापि न करना चाहिये ॥

(८२) इससे अधिक स्त्रियों को सुखी और प्रसन्न रखने का और क्या वचन होवेगा ॥

जाता है और जिस कुल में स्त्री शोक नहीं करती हैं वह कुल सदा बढ़ता है ॥ ५७ ॥

(८३) जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ५८

(८३) पूजा बिना पाये स्त्री जिस कुलको शाप देती हैं वह कुल चारों ओर से नष्ट होजाता है ॥ ५८ ॥

(८४) तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ५९

(८४) इसलिये विभूति की इच्छा करनेवाला जो पुरुष है सो वस्त्र और भोजन से सदा स्त्रियों की पूजा करता रहे ॥ ५९ ॥

(८५) सन्तुष्टो भार्य्यया भर्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च ॥
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणन्तत्र वै ध्रुवम् ६०

(८५) जिस कुल में स्त्री से पति प्रसन्न रहता है और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है उस कुल में ध्रुव करके कल्याण है ॥ ६० ॥

---

(८४) अर्थात् स्त्रियों को गहना भोजन वस्त्र सदा देता रहै ॥
(८५) अर्थात् जहां पति स्त्री में लड़ाई झगड़ा नहीं रहता उसी जगह कल्याण है ॥

(८६) यदि हि स्त्री नरोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ६१

(८६) जब स्त्री प्रसन्न नहीं रहती तो पति भी प्रसन्न नहीं रहता और जब पति प्रसन्न नहीं रहता तो संतति भी नहीं होती ॥ ६१ ॥

(८७) स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्व्वं तद्रोचते कुलम् ॥
तस्यान्त्वरोचमानायां सर्व्वमेव न रोचते ६२

(८७) स्त्री के प्रसन्न रहने से कुल प्रसन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है ॥ ६२ ॥

(८८) स सन्धार्य्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ॥
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्य्यो दुर्बलेन्द्रियैः ७९

(८८) परलोक में अक्षय स्वर्ग की और इस लोक में सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष उस गृहस्थाश्रम को नित्य ही धारण करे जो दुर्बल इन्द्रियवालों से धारण नहीं होसक्ता ॥ ७९ ॥

(८९) नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ॥
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ९७

---

(८८) धिक् उन लोगों को जो बाल बच्चों को छोड़कर आलसी हो बाहर निकल जाते हैं अथवा छापा तिलक लगा निरुद्यमी हो बैठते हैं और घर घर भीख मांगते फिरते हैं ॥

(८६) भस्म सदृश ब्राह्मण में (अर्थात् मूर्ख ब्राह्मण में) देवता और पितर के निमित्त जो वस्तु मोह से दाता लोग देते हैं सो सब नष्ट होजाता है ॥ ९७ ॥

(९०) तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ॥
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्त कदाचन १०१

(९०) तृण भूमि जल मीठी वाणी इन वस्तुओं से सज्जनों का गृह कभी शून्य नहीं रहता ॥ १०१ ॥

(९१) अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्य्योढो गृहमेधिना ॥
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् १०५

(९१) सूर्य्य के अस्त समय में अतिथि आया हो तो उसको भोजन जल अवश्य देना भोजन काल में प्राप्त हो अथवा दूसरे काल में प्राप्त हो परन्तु भोजन किये विना गृह में न रहने देना ॥ १०५ ॥

(९२) न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथिपूजनम् १०६

---

(८६) न जानिये लोग फिर क्यों ऐसे मूर्खों को दही पेड़े खिलाते हैं ॥

(९०) अर्थात् घर आये को जल से पांव धुला के आसनपर बैठाले और उससे मीठी बात करने में सज्जन पुरुष कभी नहीं चूकते ॥

(६२) जो वस्तु अतिथि को भोजन न करावे उस वस्तु को आप भोजन न करे और अतिथि को भोजन देना यह तो धन यश आयुष् स्वर्ग इनका हित करनेवाला है ॥ १०६ ॥

(६३) सुवासिनीः कुमारीश्च गर्भिणी रोगिणीस्त्रियः॥
अतिथिभ्योग्रएवैता भोजयेदविचारयन् ११४

(६३) पतोहू विवाही लड़की छोटा लड़का रोगी गर्भिणी इन सबको अतिथि-भोजन के पहिले भोजन देना इसमें विचार न करना ॥ ११४ ॥

(६४) यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमंत्रवित् ॥
तावतो ग्रसते प्रेत्यदीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् १३३

(६४) देवता और पितरों के अन्न को जै ग्रास मूर्ख ब्राह्मण भोजन करता है तै वार श्राद्ध करनेवाला अग्नि से तप्त-शूल और ऋष्टि (अर्थात् दुधारा शस्त्र) और लोहपिण्ड इन सबको भोजन करता है ॥ १३३ ॥

---

(६२) अर्थात् ऐसा न करे कि अच्छा अच्छा तो आप खाजावे और बुरा बुरा अतिथि को देवे ॥

(६४) न जाने लोग फिर क्यों मूर्ख ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और ब्राह्मण किस कारण लिखने पढ़ने में मन नहीं लगाते ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

(६५) चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यंगुरौ द्विजः ॥
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् १

(६५) आयुष् के चारभागों में से पहिले भाग में गुरुकुल में वास करे दूसरे भाग में विवाह करके गृह में रहे (इस स्थान में यह सन्देह होसक्ता है कि आयुष् का निश्चित काल परिणाम तो जान नहीं पड़ता चारभाग का पहिलाभाग किस प्रकार से जाना जाय कदाचित् कहो कि सौ वर्ष के पुरुष होते हैं यह श्रुति में लिखा है तो २५ वर्ष चौथा भाग हुआ तो मनुजी ने छत्तिस वर्षतक ब्रह्मचर्य करना यह कहा है इसके साथ विरोध पड़ेगा इसलिये जब तक ब्रह्मचर्य होसके सोई आयुष् का चौथा भाग है)॥१॥

(६६) सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः १२

(६६) परम संतोष को पाके सुखार्थी संयम (अर्थात् इंद्रिय निग्रह) करे क्योंकि सुख की जड़ संतोष है दुःख की जड़ असंतोष है ॥ १२ ॥

---

(६५) यह वचन ब्राह्मणों के लिये है ॥

(९७) इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत कामतः ॥
अतिप्रसक्तिञ्चैतेषां मनसा सन्निवर्तयेत् १६

(९७) इच्छा से रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द इन सबमें प्रसक्त न होवे इन सबमें अति प्रसक्ति को मन से निवृत्त करे ॥ १६ ॥

(९८) बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ॥
नित्यंशास्त्राण्यवेक्षेतनिगमांश्चैववैदिकान् १६

(९८) बुद्धि को बढ़ानेवाला जो शास्त्र है और धनको देनेवाला जो शास्त्र है और हित करनेवाला जो शास्त्र है इन सबको देखना और वेदार्थ का बतलानेवाला जो ग्रन्थ है उसको भी नित्यही देखना ॥ १६ ॥

(९९) यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ॥
तथातथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते २०

(९९) मनुष्य जैसा जैसा शास्त्र का अभ्यास करता है तैसा तैसा विशेष करके जानता है और उसे ज्ञान भी रुचता है ॥ २० ॥

(१००) न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधाशक्तः कथञ्चन ॥
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति २४

(१००) समर्थ जो स्नातक (अर्थात् गृहस्थ) है सो भूख से कभी दुःखित न होवे अर्थात् भूखा न रहे और विभव रहते जीर्ण और अस्वच्छ वस्त्र न पहने ॥ ३४ ॥

(१०१) क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तःशुक्लाम्बरः शुचिः॥
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ३५

(१०१) वेदाभ्यास में और अपने हित कर्म में नित्य युक्त रहे और केश नख दाढी इन्हें छोटा किये रहे श्वेत वस्त्र पहने पवित्रता से रहे इंद्रियों को निग्रह किये रहे ॥ ३५ ॥

(१०२) ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्माथौं चानुचिन्तयेत् ॥
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ९२

(१०२) पहररात्रि रहते उठके धर्म और अर्थ इन दोनों का चिंतन करे और धर्म अर्थ का जड़ जो शरीर क्लेश है उसको भी चिन्तन करे और वेद का जो तत्त्व अर्थ है उसको भी चिंतन करे ॥ ९२ ॥

(१०३) न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥
न वासोभिस्सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये १२९

(१०३) भोजन किये हो और आतुर हो तो स्नान न करे वस्त्र सहित वारंवारभी स्नान न करे अर्द्धरात्र में और जो जलाशय जाना नहीं गया है उसमें स्नान न करे ॥ १२९ ॥

(१०४) सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्म्मस्सनातनः १३८

(१०४) सत्य बोलना प्रिय बोलना सत्य भी हो और प्रिय न हो तो उसको न बोलना प्रिय भी हो और सत्य न हो तो उसको भी न बोलना यह नित्य धर्म है ॥ १३८ ॥

(१०५) हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान्॥
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् १४१

(१०५) हीन अंगवाला अधिक अंगवाला मूर्ख वृद्ध कुरूप हीन जाति हीन द्रव्यवाला इन सभों की निन्दा न करनी (अर्थात् काणा है तो उसको काणा कहके न पुकारना) १४१ ॥

(१०६) मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ॥
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः १४५

(१०६) मंगल आचार से युक्त रहे भीतर बाहर से शुद्ध रहे जितेन्द्रिय होकर जप और होम करे आलस को छोड़ देवे ॥ १४५ ॥

(१०७) मैत्रम्प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ॥
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् १५२

(१०७) विष्ठा त्याग देह प्रसाधन (अर्थात् शृंगार आदि) प्रातस्नान दंतधावन अंजन देवता का पूजन इन सब कर्म को पूर्वाह्न काल(अर्थात् दिन के पूर्वभाग) में करना ॥१५२॥

(१०८) अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ॥
कृताञ्जलिरुपासीतगच्छतःपृष्ठतोऽन्वियात् १५४

(१०८) अपने गृह में आये हुये वृद्धों को प्रणाम करे अपना आसन बैठने के लिये देवे हाथ जोड़ के सम्मुख खड़ा रहे चलने लगें तो पीछे पीछे (कुछ दूर) आप भी चले ॥ १५४ ॥

(१०९) आचार्यञ्च प्रवक्तारम्पितरम्मातरं गुरुम् ॥
नहिंस्याद्ब्राह्मणान्गांश्चसर्वांश्चैवतपस्विनः १६२

(१०९) आचार्य वेदाध्यायका कहनेवाला पिता माता गुरु ब्राह्मण गौ तपस्वी इन सबमें से किसी को भी न मारे ॥१६२॥

(११०)नास्तिक्य वेदनिन्दाञ्च देवतानाञ्च कुत्सनम्॥
द्वेषं दम्भञ्च मानञ्च क्रोधं तैक्ष्ण्यञ्च वर्जयेत् १६३

---

(१०९) गौ से इस देश में बड़े काम निकलते हैं अतएव रक्षा के योग्य है ॥

(११०) नास्तिकपना और वेद और देवताओं की निंदा और शत्रुता और दम्भ और मान और क्रोध और तीक्ष्णता इन सबको न करना ॥ १६३ ॥

(१११) परस्य दण्डन्नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ॥
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं ताडयेत्तु तौ १६४

(१११) क्रोध पाके दूसरे के मारने के लिये लाठी न चलावे और न दूसरे को किसी प्रकार से मारे परन्तु पुत्र और शिष्य इन दोनों को सिखाने के लिये ताड़ना करे ॥ १६४ ॥

(११२) नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ॥
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति १७२

(११२) अधर्म शीघ्रही नहीं फलता गौ (अर्थात् पृथिवी) की नाईं (जैसे पृथिवी बीज बोने से शीघ्र फल नहीं देती किन्तु काल पाके देती है) अधर्म करने वाले का धीरे धीरे सर्व नाश हो जाता है ॥ १७२ ॥

---

(११०) जो लोग हिन्दू कहलाते हैं उनको यह श्लोक सदा स्मरण रखना चाहिये ॥

(११२) काशी के कितने ही हिन्दुओं ने इसका अर्थ विपरीत समझ रक्खा है क्योंकि उनका कर्म्म विपरीत दिखलाई देता है पण्डितों को चाहिये कि इन महापुरुषों को सीधा अर्थ समझा देवें ॥

(११३) अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ॥
ततःसपत्नान्जयति समूलस्तु विनश्यति १७४

(११३) अधर्म करनेवाला पहले बढ़ता है फिर कल्याण को देखता है फिर शत्रुओं को जीतता है पश्चात् मूलसहित नाश हो जाता है ॥ १७४ ॥

(११४) सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ॥
शिष्यांश्चशिष्याद्धर्म्मेणवाग्बाहूदरसंयतः १७५

(११४) भले लोगों का आचार सत्य धर्म पवित्रता इन सब में सर्व काल रति करे भार्या पुत्र दास छात्र इन सबको धर्म से शासन (अर्थात् ताड़न) करे वाणी बाहु उदर इनका संयम करे (वाणी का संयम सत्य भाषण से होता है) बाहु के बल से किसी को पीड़ा न देवे तब बाहु का संयम होता है जो कुछ थोड़ा सा मिल जाय उसीके भोजन से संतुष्ट रहने से उदर का संयम होताहै ॥ १७५ ॥

(११५) परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥
धर्मञ्चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च १७६

---

(११३) अर्थात् अधर्म करनेवाला चाहे जितना बढ़े परन्तु अन्त उसका बुरा है मूलसहित नाश हो जायेगा ॥

(११५) धर्म से वर्जित जो अर्थ काम है उसका त्याग करना और जो धर्म से वर्जित नहीं है परन्तु लोक से विरुद्ध है और आनेवाले काल में दुःख का देनेवाला है उसका भी त्याग करना ॥ १७६ ॥

(११६) न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ॥
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः १७७

(११६) हाथ पांव आंख वाणी इन सबको चंचल न रक्खे टेढ़ा न रहे परद्रोह कर्म में बुद्धि को न लगावे ॥ १७७ ॥

(११७) प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ॥
प्रतिग्रहेण तस्याशु ब्राह्मं तेजःप्रशाम्यति १८६

(११७) दान लेने में समर्थ हो तो भी न लेवे दान लेने से ब्रह्म-तेज शान्त होता है ॥ १८६ ॥

(११८) हिरण्यभूमिमश्वंगामन्नं वासस्तिलान् घृतम् ॥
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् १८८

(११८) स्वर्ण भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल घृत इन सबमें से कोई एक वस्तु को प्रतिग्रह करने से मूर्ख ब्राह्मण लकड़ी की नाईं भस्म हो जाता है ॥ १८८ ॥

---

(११८) हमारी जान में जब मूर्ख ब्राह्मण यह सब लेने से भस्म होता है तो देनेवाले को भी पाप लगेगा क्योंकि ब्राह्मण

(११९) अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सहतेनैव मज्जति १९०

(११९) तप और वेद से रहितहै प्रतिग्रहमें रुचिरखता है ऐसा ब्राह्मण दातासहित डूबता है जैसे जलमें पत्थरकी नौका ॥१९०॥

(१२०) नवार्य्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजेः ॥
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् १९२

(१२०) वैडालव्रतिक और बकव्रतिक और मूर्ख इन तीनों ब्राह्मणों को धर्म जाननेवाला पुरुष जलमात्र भी न देवे १९२॥

(१२१) त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च १९३

(१२१) विधि से अर्जित धन जो इन तीनों को देवे तो परलोक में वह दानदाता और प्रतिग्रहीता दोनों के अनर्थ का हेतु होता है ॥ १९३ ॥

का भस्म करना कदापि श्रेय नहीं जो लोग घाटिये गंगापुत्र गयावाल और पंडों को दान देते हैं उन्हें इस वचन पर ध्यान भी रखना चाहिये ॥

(११९) जो लोग लौकिक में नाम पानेके निमित्त इस काल के ऐसे ब्राह्मणों को कि वेद का एक अक्षर भी नहीं जानते और प्रतिग्रह में जो देते हैं धन बांटा करते हैं उन्होंने क्या कभी यह वचन मनुजी का नहीं सुना ॥

(१२२) यथा प्लवेनोपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौदातृप्रतीच्छकौ १६४

(१२२) जिस प्रकार से पत्थर की बनाई हुई नाव पर चढ़कर जल में डूबता है तिसी प्रकार से दाता और प्रतिग्रहीता दोनों नरक में डूबते हैं ॥ १६४ ॥

(१२३) धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ॥
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः १६५

(१२३) धर्मध्वजी (अर्थात् जो नाम पाने के लिये मनुष्यों में अपने को बड़ा धार्मिक प्रसिद्ध करता है) लोभी बहाने से चलनेवाला वंचना करनेवाला घातुक (अर्थात् घात करनेवाला) सबकी निन्दा करनेवाला ऐसा जो है सो वैडालव्रतिक कहलाता है (अर्थात् बिल्ली की नाईं उसका आचरण है) ॥ १६५ ॥

(१२४) अधो दृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ॥
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः १६६

(१२४) नीचे देखनेवाला निठुर (अर्थात् दयाशून्य) अपने अर्थ के साधने में तत्पर टेढ़ा रहनेवाला झूठी नम्रतावाला ऐसा

---

(१२२) हे हमारे देशवासियो ! कान खोलो और इसको सुनो ॥

जो है सो वकव्रतिक कहलाता है (अर्थात् बकुला की नाईं उसका आचरण है) ॥ १६६ ॥

(१२५) ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा १६७

(१२५) बकव्रतिक वैडालव्रतिक ये दोनों अपने पाप से अन्धतामिस्र नाम नरक में जाते हैं ॥ १६७ ॥

(१२६) धर्मं शनैस्सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ॥
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् २३८

(१२६) किसी जीवको पीड़ा न होने पावे ऐसी रीति से परलोकके सहाय के लिये धर्म को बटोरे जैसे दीमक वल्मीक (अर्थात् अपनी बांबी) को बटोरती है ॥ २३८ ॥

(१२७) नामुत्रहि सहायार्थम्पिता माता च तिष्ठतः ॥
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः २३९

(१२७) माता पिता पुत्र भार्या जाति ये सब परलोक में सहाय के लिये नहीं रहते केवल धर्म ही रहता है ॥ २३९ ॥

(१२८) एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् २४०

(१२८) अकेला ही उत्पन्न होता है अकेला ही लीन होता है अकेला

ही सुकृत (अर्थात् पुण्य) को भोग करता है अकेला ही दुष्कृत (अर्थात् पाप) को भोगता है ॥ २४० ॥

(१२६) मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ॥
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्म्मस्तमनुगच्छति २४१

(१२६) जब काठ और ढेले के सदृश मृतशरीर को पृथिवी में त्याग करता है बांधव लोग सब मुँह फेर लेते हैं परन्तु धर्म उसके पीछे चला जाता है ॥ २४१ ॥

(१३०) तस्माद्धर्म्मं सहायार्थन्नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः॥
धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् २४२

(१३०) इसलिये सहाय के अर्थ नित्यही धीरे धीरे धर्म को बटोरे धर्म की सहायता से दुस्तर नरक को तरता है ॥२४२॥

(१३१) दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ॥
अहिंस्रोदमदानाभ्यांजयेत्स्वर्गन्तथा व्रतः २४६

(१३१) दृढकारी अर्थात् जिस कार्य का आरम्भ किया उस कार्य को समाप्त करनेवाला कोमल स्वभाववाला शीत घाम आदि जो द्वन्द्व हैं उनको सहनेवाला इंद्रियों को विषयों से रोकनेवाला क्रूराचारवाले पुरुषों के साथ सम्बन्ध को छोड़नेवाला हिंसा से निवृत्त रहनेवाला दान करने वाला स्वर्ग को पाता है ॥ २४६ ॥

(१३२) यादृशोऽस्यभवेदात्मा यादृशञ्च चिकीर्षितम् ॥
यथा चोपचरेदेनं तथात्मानं निवेदयेत् २५५

(१३२) जो सज्जनों के मध्य में अपने को छिपाता है अर्थात् जैसा है वैसा नहीं बतलाता सो लोक में बड़ा पाप करने वाला है और चोर है अर्थात् अपनी आत्मा को चुराता है ॥ २५५ ॥

(१३३) योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथासत्सु भाषते ॥
सपापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः २५६

(१३३) जितने अर्थ हैं सो सब वाणी में रहते हैं वाणी उनका मूल है वाणी से निकलते हैं उस वाणी को जिसने चुराया (अर्थात् जो झूठ बोला) सो सब वस्तु का चुराने वाला हुआ ॥ २५६ ॥

पञ्चम अध्याय ॥

(१३४) यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ॥
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ४६

(१३४) जो सब जीवों को बन्धन और वध का क्लेश देने की इच्छा नहीं करता सो सबका हितकारी है अति सुख को पाता है ॥ ४६ ॥

(१३५) नाकृत्वा प्राणिनां हिंसाम्मांसमुत्पद्यते क्वचित॥
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसंविवर्जयेत् ४८

(१३५) प्राणियों की हिंसा विना मांस नहीं मिलता और प्राणियों का वध तो स्वर्ग के लिये नहीं है इसलिये मांस का त्याग करना ॥ ४८ ॥

(१३६) समुत्पत्तिञ्च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्॥
प्रसमीक्ष्य निवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ४६

(१३६) मांस की उत्पत्ति और प्राणियों का वध और बन्धन इन सबको देखकर सर्व मांस का भक्षण त्याग करे ॥ ४६ ॥

(१३७) स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ॥
अनभ्यर्च्यपितॄन्देवांस्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत् ५२

(१३७) पराये मांस से अपने मांस को बढ़ाने की जो पुरुष इच्छा करता है उससे अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

---

(१३५) अर्थात् मांस न खाना ॥

(१३६) अर्थात् किसीप्रकार का भी मांस न खावे ॥

(१३७) क्या पण्डितों ने मांसाहारी हिन्दुओं को यह वचन कभी नहीं सुनाया ॥

(१३८) अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनःसत्येन शुध्यति॥
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेनशुध्यति १०९

(१३८) जल से शरीर, सत्य से मन, ब्रह्मविद्या और तपसे भूतात्मा (अर्थात् लिंगशरीर सहित जीवात्मा) ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है ॥ १०९ ॥

(१३९) सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ॥
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया १५०

(१३९) स्त्री सर्वकाल में हृष्ट और गृहकार्य में दक्ष रहे गृह की सब सामग्री सुन्दर प्रकार से बनाये रक्खे और यथायोग्य व्यय करे ॥ १५० ॥

(१४०) विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः॥
उपचर्यः स्त्रियासाध्व्या सततं देववत्पतिः १५४

(१४०) शीलसे रहित पति हो अथवा दूसरी स्त्री के साथ प्रेम रखता हो किंवा गुणों से वर्जित हो तो भी जो साध्वी स्त्री हैं वे नित्यही देवता की नाईं पति की सेवा करें ॥१५४॥

(१४१) नास्तिस्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतन्नाप्युपोषितम्॥
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते १५५

(१४१) स्त्रियों का यज्ञ व्रत उपवास पृथक् नहीं है केवल पति की सेवाही से स्वर्ग में पूजित होती हैं ॥ १५५ ॥

(१४२) पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा॥
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् १५६

(१४२) पतिलोक की इच्छा करनेवाली साध्वी स्त्री जीते अथवा मरे हुये पति का अप्रिय कुछ भी काम न करे॥ १५६ ॥

षष्ठ अध्याय ॥

(१४३) नाभिनन्देत मरणन्नाभिनन्देत जीवितम् ॥
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशम्भृतको यथा ४५

(१४३) मनुष्य मरण और जीवन इन दोनों में से किसी की भी इच्छा न करे केवल कालही की प्रतीक्षा में रहे जिस रीति से भृत्य स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है ॥ ४५ ॥

(१४४) दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ४६

(१४४) धरती पर देख के पांव रक्खे जल को कपड़े से छान के

---

(१४३) अर्थात् जो कुछ ईश्वर की इच्छा है उसी में सन्तुष्ट रहे आप कुछ न चाहे ॥

पीवे सत्य करके पवित्र वाणी को बोले मन पवित्र रखके सारे काम करे ॥ ४६ ॥

(१४५) अतिवादांस्तितिक्षेत् नावमन्येत कञ्चन ॥
न चेमन्देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनाचित् ४७

(१४५) दूसरे मनुष्यों की बुरी वाणी को सहे किसी का अपमान न करे किसी से वैर न करे ॥ ४७ ॥

(१४६) क्रुध्यन्तन्न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ॥
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतां वदेत् ४८

(१४६) अपने ऊपर कोई क्रोध भी करे तो उसपर आप क्रोध न करे अपनी निन्दा भी कोई करे तो आप उससे अच्छी वाणी से बोले सप्तद्वार से निकले हुये वचन को अनृत न बोले ॥ ४८ ॥

(१४७) इन्द्रियाणान्निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ॥
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ६०

(१४७) इन्द्रियों का निरोध राग द्वेष का क्षय सब जीवोंकी अहिंसा इनसे मनुष्य मोक्ष के योग्य होता है ॥ ६० ॥

(१४८) यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ॥
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ८०

(१४८) जब परमार्थ से विषयों में दोषभावना करके सब वस्तु में इच्छा से रहित होता है तब इस लोक में और परलोक में सुख को पाता है ॥ ९० ॥

(१४९) चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ॥
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ९१

(१४९) चारों आश्रमवाले नित्य ही दश लक्षणवाला जो धर्म उस का सेवन यत्नपूर्वक करें ॥ ९१ ॥

(१५०) धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ९२

(१५०) दशलक्षण कहते हैं १ धृति (अर्थात् संतोष) २ क्षमा (अर्थात् किसी से अपकार पाकर उसका अपकार न करना और बुराई के पलटे भलाई करना) ३ दम (अर्थात् विकार करनेवाला विषय पाकर मन में विकार न होने देना) ४ चोरी का त्याग ५ पवित्रता ६ विषयों से इंद्रियों का रोकना ७ शास्त्र आदि का तत्त्वज्ञान

---

(१४९) जो लोग हिन्दू कहाते हैं वे नेक अपने मन में शोचें कि इस धर्म के सेवन का जो मनुजी ने दशलक्षण कहके बतलाया है क्या यत्न करते हैं ॥

८ आत्मज्ञान ९ सत्य १० क्रोध का हेतु रहते भी क्रोध न करना ॥ ९२ ॥

सप्तम अध्याय ॥

(१५१) दुःष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः ॥
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् २४

(१५१) दंड के विभ्रम से (अर्थात् दण्ड के योग्य को न दण्ड देने से और दंड के योग्य जो नहीं है उसको दंड देनेसे) संपूर्ण वर्ण दोपी होजायंगे और संपूर्ण मर्यादा टूट जायगी संपूर्ण लोक को क्षोभ हो जावेगा सब बिगड़ जावेगा॥२४॥

(१५२) त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दंडनीतिं च शाश्वतीम्॥
आन्वीक्षिकींचात्मविद्यां वार्तारंभांश्चलोकतः ४३

(१५२) तिन विद्या के जाननेवाले ब्राह्मणों से तीन विद्या और सनातन दंडनीति और तर्कविद्या और ब्रह्मविद्या और (धन मिलने का उपाय जाननेवाले) लोगों से कृषि वाणिज्य पशुपालन आदि वार्ता को सीखे ॥४३॥

(१५३) इन्द्रियाणाञ्जयेयोगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशेस्थापयितुं प्रजाः४४

---

(१५१) यह अध्याय राजा के वास्ते है॥

(१५३) रात्रि दिन इंद्रियों के जीतने में उद्योग करे जितेंद्रिय राजा संपूर्ण प्रजा को अपने वश में रखसक्ता है ॥ ४४ ॥

(१५४) दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ॥
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्ज्जयेत् ४५

(१५४) काम से उत्पन्न दश वस्तु और क्रोध से उत्पन्न आठ वस्तु इनको यत्न से वर्जन करे ॥ ४५ ॥

(१५५) कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ॥
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैवतु ४६

(१५५) काम से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से राजा धर्म और अर्थ से रहित होता है और क्रोध से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से आप ही नष्ट होजाता है ॥ ४६ ॥

(१५६) मृगयाक्षादिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः ॥
तौर्य्यत्रिकंवृथाढ्याचकामजोदशको गणः ४७

(१५६) अहेर और पांसे का खेलना दिन में सोना पर का दोष कहना स्त्री की सेवा सुरापान नाचना गाना बजाना वृथा घूमना ये दश काम से उत्पन्न हैं ॥ ४७ ॥

---

(१५३) खेद की बात है कि पंडित लोग दान दक्षिणा मिलने की कथा तो नित्य सुनाया करते हैं परन्तु ऐसे ऐसे श्लोक हमारे राजा महाराजों को कभी नहीं समझाते ॥

(१५७) पैशुन्यं साहसं द्रोहईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ॥
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपिगणोऽष्टकः ४८

(१५७) किसी का दोष किसी से कहना बल से काम करना कपट से वध दूसरे के गुण को न सहना पर के गुण में दोष निकालना अर्थ को चुराना अथवा देने योग्य वस्तु को न देना वाणी से कठोर बोलना दंड से ताड़न करना ये आठ क्रोध से उत्पन्न हैं ॥ ४८ ॥

(१५८) द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ४९

(१५८) दोनों गणों का मूल लोभ है उसको यत्न से जीतना इस के जीतने से दोनों गण जीते जाते हैं इस बात को कवियों ने कहा है ॥ ४९ ॥

(१५९) मोहाद्राजास्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥
सोऽचिराद्भ्रश्यतेराज्याज्जीविताच्च सबान्धवः १११

(१५९) जो राजा मोह से विना देखे अपनी प्रजा को पीड़ा देता है सो थोड़े ही काल में प्राण राज्य बांधव सब सहित नाश हो जाता है ॥ १११ ॥

(१६०) शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ॥
तथा राज्ञामपिप्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ११२

(१६०) जिस रीति से शरीर को कष्टदेने से सब इन्द्रियों को कष्ट होता है तिसी रीति से प्रजा की पीड़ा से राजा का प्राण पीड़ित होता है ॥ ११२ ॥

अष्टम अध्याय ॥

(१६१) सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम् ॥
अब्रुवन्विब्रुवन्वाऽपि नरो भवति किल्बिषी १३

(१६१) या तो सभा में जाना ही नहीं और जो जाना तो यथार्थ ही बोलना जानके न बोले अथवा विरुद्ध बोले तो पापी है ॥ १३ ॥

(१६२) यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः १४

(१६२) जहां अधर्म से धर्म और असत्य से सत्य मारा जाता है और देखनेवाले उसको निवारण नहीं करते तहां सभासद् ही मारे गये हैं ॥ १४ ॥

---

(१६०) अर्थात् राजा अपनी प्रजा को प्राणसमान जाने ॥

(१६१) अर्थात् झूठ कभी न बोले और काम पड़ने पर सच को कभी न छुपावे ॥

(१६३) एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ॥
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति १७

(१६३) एक धर्म ही मित्र है क्योंकि वह मरे पीछे भी साथ जाता है और बाक़ी तो सब शरीर के साथ ही नष्ट होते हैं (कदाचित् कहो कि मरे पीछे तो अधर्म भी साथ जाता है तो वह भी मित्र होना चाहिये तिसका समाधान यह है कि धर्म इष्ट फल देने के लिये जाता है और अधर्म अनिष्ट फल देने के लिये जाता है तो जो इष्टफल देने के लिये जाय सोई मित्र कहलाता है और भार्या पुत्र आदि तो शरीर के साथ ही छूटजाते हैं इसलिये पुत्र आदि में स्नेह करके धर्म को न मारना) ॥ १७ ॥

(१६४) पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ॥
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति १८

(१६४) अधर्म के चारभाग होते हैं एक एक भाग को कर्ता साक्षी सभासद् (अर्थात् मुंशी मुतसद्दी इत्यादि) और राजा ये चारों पाते हैं ॥ १८ ॥

(१६५) आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः २६

(१६५) आकार इंगित गति चेष्टा भाषित नेत्र और मुख का विकार इन सबसे भीतर का मन जाना जाता है ॥२६॥

(१६६) साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि ॥
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ७५

(१६६) जो साक्षी भले लोगों की सभा में सुनने से और देखने से विरुद्ध बोलता है (अर्थात् झूठी गवाही देता है) सो अधोमुख अर्थात् नीचे मुख होकर नरक में जाता है और परलोक में स्वर्ग को खोता है ॥ ७५ ॥

(१६७) यत्रानिबद्धोऽपीक्षेतशृणुयाद्वाऽपि किञ्चन ॥
पृष्टस्तत्राऽपि तद्ब्रूयाद्यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ७६

(१६७) तुम इसमें साक्षी हो ऐसा नहीं भी कहा है और व्यवहार को उसने देखा है और फिर वह बुलाके पूंछाजाय तो जैसा देखा है और सुना है तैसा ही कहे ॥ ७६ ॥

(१६८) सत्येन पूयते साक्षी धर्म्मः सत्येन वर्द्धते ॥
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ८३

(१६८) सत्य से साक्षी पवित्र होता है और सत्य ही से धर्म बढ़ता है इस लिये सर्व वर्णों में साक्षी को सत्य ही बोलना चाहिये॥८३॥

(१६६) हमारे पण्डितों को चाहिये कि इन श्लोकों को एकवार उन्हें सुनादेवें जो हिन्दू कहलाते हैं और नित्य गवाही देने को कचहरी में जाया करते हैं ॥

(१६९) आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः॥
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ८४

(१६९) आत्मा का आश्रय और साक्षी आत्माही है इसलिये मनुष्यों की उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत करो ॥८४॥

(१७०) मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः॥
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ८५

(१७०) पाप करनेवाले यह मानते हैं कि हमको कोई नहीं देखाता है पर उस पाप को देवता और अपने भीतर रहनेवाला पुरुष देखता है ॥ ८५ ॥

(१७१) धनुः शतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥
शम्यायतास्त्रयो वाऽपि त्रिगुणो नगरस्य तु २३७

(१७१) गौ के चराने के लिये ग्राम के चारोंओर सौ धनुप्तक अर्थात् चार सौ हाथ तक खेती न करना अथवा हाथ से लाठी फेंकना जहां जाके लाठी गिरे उतनी भूमि की तिगुनी भूमितक खेती न करना और नगर के चारोंओर तो जो कहा है उसका तिगुना छोड़ना ॥ २३७ ॥

---

(१७१) क्या अच्छी बात होती जो हिन्दू ज़मींदार लोग अब भी वैसा ही करते और अपने गाय बैलों को बढ़ाते क्योंकि

(१७२) यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ॥
यस्त्वैश्वर्य्यान्नक्षमते नरकं तेन गच्छति ३१३

(१७२) दुःखित मनुष्य से निषिद्ध भाषण को पाके जो क्षमा करता है सो स्वर्ग में पूजित होता है और जो ऐश्वर्य से क्षमा नहीं करता सो नरक में जाता है ॥ ३१३ ॥

नवम अध्याय ॥

(१७३) पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने ॥
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ३

(१७३) बाल्यावस्था में पिता युवावस्था में पति वृद्धावस्था में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करते हैं स्त्री स्वतन्त्र (अर्थात् अपने अधीन) होने के योग्य कभी नहीं होती ॥ ३ ॥

(१७४) अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ॥
शौचे धर्म्मेऽन्नपक्त्याञ्च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ११

खेत में गोबर अधिक पड़ने से अन्न बहुत उत्पन्न होता है और गाय बैलों की बहुतायत से दूध दही घी और हल गाड़ी चलाने और खेत सींचने का भी सुभीता पड़ता है हमारे देशवासी जो यह बात कहते हैं कि आगे से अब पृथ्वी में अन्न बहुत कम उपजता है उसका बड़ा कारण यह चराई न रहने से गाय बैलों का घटजाना है ॥

(१७४) अर्थ का संग्रह व्ययकर्म (अर्थात् घर का खर्च) पतिव्रता धर्म अन्न बनाना गृह की सामग्री को देखना इन सब कामों में स्त्री को अधिकार देना ॥ ११ ॥

(१७५) पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोटनम् ॥
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारी संदूषणानि षट् १३

(१७५) मद्यपान दुर्जन संग पति का विरह इधर उधर घूमना अकाल में सोना और के गृह में वास ये छः नारी को दूषण हैं॥१३॥

(१७६) पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥
सा भर्तृलोकानाप्नोतिसद्भिः साध्वीति चोच्यते २६

(१७६) मन वाणी देह से संयत (अर्थात् दोषरहित) होकर जो स्त्री अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संयोग नहीं करती सो भर्तृलोक को पाती है और इसलोक में भले लोग उसको साध्वी अर्थात् पतिव्रता कहते हैं ॥ २६ ॥

(१७७) काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ॥
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ८६

---

(१७४) आमदनी और खर्च का हिसाब स्त्री तभी रख सकेंगी और धर्म अधर्म का भेद भी तभी जानेंगी जब पढ़ी लिखी होंगी अतएव स्त्रियों को पढ़ना लिखना अवश्य सीखना चाहिये ॥

(१७७) ऋतुमती भी कन्या होकर गृह में मरणतक रहे परन्तु उस
कन्या को गुणहीन पुरुष को कभी न देवे ॥ ८९ ॥

(१७८) द्यूतं समाह्वयञ्चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ॥
राजान्तकारणावेतौद्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् २२१

(१७८) द्यूत और समाह्वय इनको राजा अपने राज्य में न होने
दे ये दोनों राज्य का नाश करनेवाले हैं ॥ २२१ ॥

(१७९) प्रकाशमेतत्तास्कर्य्यं यद्देव न समाह्वयौ ॥
तयोर्न्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् २२२

(१७९) ये दोनों प्रकाश चोरी हैं इसलिये इन दोनों के नाश का
राजा यत्न करे ॥ २२२ ॥

(१८०) अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥
प्राणिभिः क्रियमाणस्तु स विज्ञेयःसमाह्वयः२२३

(१८०) प्राणरहित (पांसे आदि) से दांव लगा के क्रीड़ा करना
द्यूत कहलाता है और प्राणसहित (लाल बुलबुल मेढे
भैंसे घोड़े इत्यादि) से दांव लगा के क्रीड़ा करना समा-
ह्वय कहलाता है ॥ २२३ ॥

(१८१)द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्य्यात्कारयेत वा ॥
तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः२२४

---

(१७८) अब तो राजा भी द्यूत और समाह्वय करनेलगे ॥

(१८१) द्यूत और समाह्वय इन दोनों को जो करे और करावे तिसको और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के चिह्न धारण करने वाले शूद्र को राजा नाश करे ॥ २२४ ॥

(१८२) द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ॥
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् २२७

(१८२) द्यूत बड़ा वैर करनेवाला है यह पूर्वकाल में भी देखा-गया इसलिये बुद्धिमान् पुरुष हँसी के अर्थ भी इसका सेवन न करे ॥ २२७ ॥

(१८३) समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि ॥
स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यश्चाशु शोधयेत २८२

(१८३) विना आपत्काल के राजमार्ग (अर्थात् सड़क) में अपवित्र वस्तु (अर्थात् कूड़ा कर्कट इत्यादि) डाले सो दो कार्षा-पण दंड देवे और अपवित्र वस्तु जो डाली है उसे उठाकर शीघ्र राजमार्ग से बाहर ले जावे ॥ २८२ ॥

---

(१८२) आश्चर्य है कि ऐसे ऐसे वचन के रहते भी हिन्दू ब्राह्मण पण्डित और राजालोग जुआ खेलैं ॥

(१८३) जो सर्कार अंग्रेज़बहादुर ने इस वचनपर ध्यान धरा होता तो फिर कोई नगर हिन्दुस्तान में मैला और अपवित्र न रहता ॥

(१८४) आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः॥
कर्म्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्न्निषेवते ३००

(१८४) काम करते करते थक जावे तो फिर भी कामों का आरम्भ करता ही रहे क्योंकि काम करनेवालों की सेवा लक्ष्मी करती है ॥ ३०० ॥

(१८५) कृतन्त्रेतायुगञ्चैव द्वापरं कलिरेव च॥
राज्ञो वृत्तानि सर्व्वाणि राजा हि युगमुच्यते ३०१

(१८५) कृत त्रेता द्वापर कलि ये ही चारों युग हैं सो नहीं किन्तु जैसा आचरण राजा करे तैसा युग होता है (अर्थात् राजा ही युग है)॥ ३०१ ॥

(१८६) मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानान्तान्तवस्य च॥
गन्धानाञ्च रसानाञ्च विद्यादर्घबलाबलम् ३२६

(१८६) वैश्य मणि मोती मूंगा लोहा सूत गन्ध रस इन सबोंका देश काल समझ के न्यून अधिक मोल जाने ॥ ३२६॥

---

(१८४) अर्थात् काम करने से कभी न घबरावे चाहे वह सिद्ध हो चाहे न हो काम करता ही रहे -यदि हमारे देशवाले इस वचन के अनुसार चलते और आलसी और निरुद्यमी न होजाते आज इस दशा को क्यों पहुँचते॥

(१८५) अर्थात् जहां जब राजा अच्छा है तहँ तब सतयुग वर्तता है॥

(१८७) बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ॥
मानयोगञ्च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ३३०

(१८७) खेत का दोष और गुण बीज बोना मस्थद्रोण आदि मान योग पाशा तोला आदि तुलायोग इन सबोंका जाननेवाला होवे ३३०

(१८८) सारासारञ्च भाण्डानां देशानाञ्च गुणागुणान् ॥
लाभालाभञ्च पण्यानां पशूनां परिवर्द्धनम् ३३१

(१८८) भाण्ड (अर्थात् पात्र) का सार असार देशों का गुण अगुण बेचने योग्य वस्तुओं का लाभ अलाभ पशुओं का बढ़ना इन सब बातों को जाने ॥ ३३१ ॥

(१८९) भृत्यानाञ्च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधानृणाम् ॥
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ३३२

(१८९) मज़दूरों की मज़दूरी मनुष्यों की नाना प्रकार की भाषा द्रव्यों के स्थिति की उपाय और बेचना मोल लेना इन सब बातों को जाने ॥ ३३२ ॥

---

(१८९) यदि हमारे देश के बनिये महाजन दुकानदार मनुजी के इन सब वचनों को मानें और अपने लड़कों को ये सब बातें और नाना प्रकार की भाषा सिखलावें तो फिर क्यों न धन धान्यसे पूर्ण होजावें परन्तु जब उन्होंने अपने ही धर्मशास्त्र से विरुद्ध काम करना और लड़कों को मूर्ख रखना स्वीकार किया तो फिर विपत्ति और दरिद्र का मुख देखकर क्यों बिलपें ॥

(१६०) शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ॥
ब्राह्मणस्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टाञ्जातिमश्नुते ३३५

(१६०) पवित्रता बड़ों की सेवा कोमल बोलना। अहंकार न करना। ब्राह्मणों के नित्य आश्रय रहना ये कर्म शूद्रों को उत्तम जाति देने वाले हैं ॥ ३३५ ॥

दशम अध्याय ॥

(१६१) अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वं सामासिकं धर्म्मञ्चातुर्वर्ण्यऽब्रवीन्मनुः ६३

(१६१) अहिंसा सत्य चोरी न करना शौच इन्द्रियों का रोकना यह संक्षेप धर्म चारों वर्ण का है ऐसा मनुजी ने कहा ॥६३॥

एकादश अध्याय ॥

(१६२) ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः ॥
महान्ति पातकान्याहुस्संसर्गश्चाऽपितैस्सह ५५

(१६२) ब्रह्महत्या सुरापान ब्राह्मण का दश माशा सोना अथवा इससे अधिकचुराना माता से सम्भोग ये चार महापातक हैं महापातकी के साथ संसर्ग करना यही पाँचवाँ महापातक है ॥ ५५ ॥

---

(१६०) अर्थात् इन कर्मों को जो शूद्रभी करे तो उसे उत्तम जाति वालों के समान मानना चाहिये ॥

(१६३) अनृतञ्च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ५६

(१६३) नीच जाति होके हम बड़ी जाति हैं ऐसा झूठ बोलना राजा के समीप (जिसमें उसका मरण हो ऐसा) किसी का दोष कहना गुरु से झूठ बोलना ये सब ब्रह्महत्या के समान हैं ॥ ५६ ॥

(१६४) उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुन्तथा ॥
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्री सुहृद्वधम् ८९

(१६४) साक्षी होके झूठ बोलने में गुरु को मिथ्या दोष लगाने में स्त्री के वध में और मित्र के वध में (ब्रह्महत्या का व्रत करना) ॥ ८९ ॥

द्वादश अध्याय ॥

(१६५) वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ॥
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते १०

---

(१६४) अर्थात् झूठी साक्षी देना इत्यादि पाप ब्रह्महत्या के बराबर हैं ॥

(१९५) जिसकी वाणी मन शरीर ये सब क्रम से निषिद्ध कथन असत्संकल्प निषिद्ध व्यापार इनका त्याग किये हुये हैं वही त्रिदण्डी कहलाता है क्योंकि दमन से दण्ड है तो जिसने तीनों से तीनों वस्तु का दमन किया वही त्रिदण्डी है॥१०॥

(१९६) त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः॥
कामक्रोधौ तु संयम्य ततस्सिद्धिन्नियच्छति ११

(१९६) सम्पूर्ण जीवों में इन तीनों दण्ड को (अर्थात् मनोदण्ड कायदण्ड वाणीदण्ड को) स्थापन करके और काम क्रोध को रोक के सिद्धि को पाता है ॥ ११ ॥

इति।